P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-1) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

स्वामी वल्लभाचार्य के दर्शन की सामाजिक दृष्टि

अशोक कुमार चौरसिया
शोधार्थी,
इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
डॉ0 बी0आर0ए0विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

सुगम आनन्द
प्रोफेसर,
इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
डॉ0 बी0आर0ए0विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

मध्यकालीन सगुण भक्ति परम्परा की कड़ी में स्वामी वल्लभाचार्य के प्रादुर्भाव के समय देश में विषम राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। स्वामी वल्लभाचार्य के जीवनकाल (1478–1530 ई0) में दिल्ली में बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी तथा इब्राहीम लोदी का शासन रहा। सिकन्दर लोदी (1489–1517 ई0) अत्यन्त धर्मान्ध, एवं कट्टर मुस्लिम शासक था जिसने मथुरा के मन्दिरों को ध्वस्त कराया तथा हिन्दुओं पर प्रतिबन्ध लगाये। सिकन्दर लोदी ने मथुरा के हिन्दुओं पर अपने सिर तथा दाढ़ी मुड़वाने तथा धार्मिक कृत्य करने पर कड़ी पाबंदी लगा दी थी। हिन्दू अपनी धार्मिक क्रियाऐं नहीं कर सकते थे। हिन्दू यमुना में स्नान तक नहीं कर सकते थे। एक ओर जहाँ मुस्लिम शासकों की मजहबी तानाशाही से भय था, वहीं दूसरी तत्कालीन हिन्दू समाज में धर्म गुरूओं ने समाज को धर्मावडंबरों के प्रभाव में रखा हुआ था। तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य में स्वामी वल्लभाचार्य का दृष्टिकोण युग सापेक्ष्य तथा मानवजाति के हित में था। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों तथा सामाजिक बन्धनों को समाप्त कर कृष्ण उपासना का अधिकार समाज के सभी वर्गों एवं जातियाँ देकर एक क्रान्तिकारी कार्य किया। शूद्रों तथा नारियों को समान सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार देने के वह प्रबल पक्षधर थे। सती प्रथा का उन्होंने उस समय विरोध किया। स्वामी वल्लभ की जीवन यात्रा मानव कल्याण को लक्ष्य बनाकर चलती रही। उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा कि आचरण की शुद्धता से ही प्रभु का अनुग्रह अर्थात् कृपा प्राप्त होती है।

तत्कालीन समाज में पुष्ट मार्गीय भक्ति परम्परा की स्थापना के साथ जन मानस को भगवत अनुग्रह की ओर आकृष्ट किया। मानव जीवन के वृहत्तर विकास की संभावनाओं को ध्यान में रखकर ही उन्होंने पुष्टि मार्ग की भाव सिद्ध भक्ति परम्परा की स्थापना की थी। उनका सबसे बड़ा सामाजिक अवदान तत्कालीन समाज में लोक मंगल की भावना को सरल, सहज तथा सभी को ग्राह्य रूप में स्थापित करना था।

मुख्य शब्द : पुष्टिमार्ग, शुद्धाद्वैत दर्शन, श्रीनाथ जी, सुबोधिनी टीका, वार्ता साहित्य।

प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय समाज में नवजाग्रति तथा श्रीकृष्ण उपासना के लिए पुष्टिमार्ग की स्थापना के साथ सर्वप्रथम स्वामी वल्लभाचार्य ने अपने जीवन में सम्पूर्ण भारत की तीन बार आध्यात्मिक यात्रायें कीं। जिससे कि धर्म तथा स्थान–स्थान पर समाज में व्यापक परिवर्तन लाया जा सके। उन धार्मिक चर्चाओं में उन्होंने प्रकांड विद्वता एवं प्रबल युक्तियों द्वारा मत–मतान्तरों द्वारा फैलायें गये पाखंडवाद और शंकराचार्य के अद्वैतवाद अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त सभी मिथ्या है तथा विशुद्ध ब्रह्मवाद एवं भक्ति प्रधान सेवा प्रधान पुष्टिमार्ग का मंडन किया था। 1493 ई0 में उन्होंने तत्कालीन समाज को निकट से समझने तथा धार्मिक पुनरुत्थान के लिए ब्रज की पहली यात्रा की थी। मथुरा में उन्होंने विश्राम घाट की यन्त्र बाधा–रूपी अंधविश्वास को दूर किया।

इसी प्रकार अपनी द्वितीय आध्यात्मिक यात्रा का प्रारम्भ 1497 ई0 में विशुद्ध ब्रह्मवाद और पुष्टिमार्गीय भक्ति सिद्धान्त का व्यापक प्रचार करके समाज में व्याप्त धार्मिक आडम्बरों तथा संशयों का निदान तर्क की कसौटी पर वैज्ञानिकता के साथ किया।

उन्हें ज्ञात हुआ कि गिरिराज पहाड़ी की कंदरा एक भगवद स्वरूप का प्राकट्य हुआ है। लेकिन उस काल की विषम परिस्थितियों में उस देव स्वरूप की पूजा–आराधना करने का किसी को साहस नहीं था। स्वामी वल्लभाचार्य ने उक्त देव स्वरूप के दर्शन किए और उन्हें 'श्रीनाथ जी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कृष्णाश्रम का मन्त्र देकर ब्रजवासियों में आत्मबल का संचार किया। स्वामी वल्लभाचार्य ने गिरिराज पहाड़ी पर एक छोटा सा कच्चा मन्दिर बनवाकर श्रीनाथ जी के स्वरूप को विराजमान किया। फलस्वरूप गोवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा के प्रचलन से ब्रज में धार्मिक और सांस्कृतिक पुनत्थान की आधारशिला रखने का अभूतपूर्व कार्य किया। ब्रज की तृतीय यात्रा (1515 ई0) में स्वामी वल्लभाचार्य को गोवर्धन प्रवास के दौरान ज्ञात हुआ कि श्रीनाथ जी के स्वरूप की स्थानीय मुस्लिम शासकों से सुरक्षा के लिए गांढोली वन में स्थानान्तरित कर दिया गया है। स्वामी वल्लभाचार्य ने तदन्तर श्रीनाथ के स्वरूप को मन्दिर में स्थापित करने के कार्य को आगे बढ़ाया। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद संवत् 1576 ई0 में यह मन्दिर बन कर तैयार हुआ।

अध्ययन का उद्देश्य

1. स्वामी वल्लभाचार्य की समकालीन सामाजिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करना।
2. स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों तथा परम्पराओं के विरोध तथा उनके द्वारा श्रीकृष्ण की आराधना के लिए समाज की सभी जातियों एवं धर्मों के लोगों के लिए समान दृष्टि तथा उसके प्रभाव का अध्ययन करना।
3. स्वामी वल्लभाचार्य के दर्शन में सामाजिक जीवन में परिवर्तन के लिए सुलभ सहज तथा सभी को ग्राह्य मार्ग के प्रतिपादन का अध्ययन करना।
4. स्वामी वल्लभाचार्य के व्यापक सामाजिक दर्शन का तत्कालीन समाज पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करना।

साहित्यावलोकन

इस शोध पत्र के लेखन में शोधार्थी ने निम्न प्रमुख ग्रन्थों का पुनरावलोकन किया है।

अणुभाष्य स्वामी वल्लभाचार्य, 2005, अक्षय प्रकाशन, दिल्ली। श्री वादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्रों पर लिखा यह भाष्य है। वेदान्त सूत्रों पर स्वामी वल्लभाचार्य से यद्यपि पूर्व में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य ने विशिष्ट द्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, मध्वाचार्य के द्वैतवाद के तदन्तर स्वामी वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत का प्रवर्तन इसी भाष्य के आधार पर प्रस्तुत किया। स्वामी वल्लभाचार्य ने अपने ढंग से व्याख्या करके उसमें भक्ति को सिद्धान्त रूप में समाहित किया। स्वामी वल्लभाचार्य ने ब्रह्मतत्व के अन्तर्गत ईश्वर, माया एवं अविद्या के सिद्धान्तों का अध्ययन करते हुए शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। अणुभाष्य में स्वामी वल्लभ ने भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन किया है जिसमें मर्यादा मार्ग तथा प्रवाहमार्ग जैसी विविध भक्ति पद्धतियों का परिचय भी दिया गया है।

तत्वार्थदीप निबन्ध, (शास्त्रार्थ प्रकरण), श्री वल्लभाचार्य, 1926, लल्लूभाई छगनलाल देसाई प्रकाशित, अहमदाबाद। इस ग्रन्थ में स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा अपनी यात्राओं के समय आयोजित शास्त्राथों में दिये गये तर्कों का संग्रह है। विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर स्वामी वल्लभ के विचार भी इस ग्रन्थ से प्राप्त होते है।

चौरासी, वैष्णवन की वार्ता, गोस्वामी गोपीनाथ, संवत् 1985, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई। इस वार्ता साहित्य में स्वामी वल्लभाचार्य के 84 शिष्यों की कथाओं का विवरण दिया गया है। इनमें से कई अलौकिक भाव साहित्य के रचयिता भी थे। वार्ता साहित्य का आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक महत्व है। स्वामी वल्लभाचार्य के विभिन्न शिष्यों द्वारा विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर का विवरण जहां प्राप्त होता है। वहीं तत्कालीन समाज, धर्म तथा राजनीति पर भी प्रकाश पड़ता है।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, गोस्वामी गोकुलनाथ, संवत् 2008। द्वारकादास परीख, अष्टछाप स्मारक समिति, कांकरौली। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में स्वामी वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के दौ सो बावन शिष्य, सेवकों के चरित्र हैं। जिन्होंने अपने आदर्श चरित्रों द्वारा पुष्टिमार्ग को जनमानस तक प्रकाशित किया। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सन्दर्भों का भी बोध होता है। उदाहरण के लिए भक्ति में ऊँच–नीच, हिन्दू–मुस्लिम जैसी सामाजिक मान्यताओं का विरोध किया गया है।

विजयेन्द्र स्नातक (2016), श्री वल्लभाचार्य, एन0बी0टी0, नई दिल्ली। इस पुस्तक में लेखक ने स्वामी वल्लभाचार्य असमानता का वातावरण व्याप्त था। समाज में इस विकृति मानसिकता से निकलने की छटपटाहट थी। उपरोक्त विषम परिस्थितियों में स्वामी वल्लभाचार्य एक स्वतन्त्र भक्ति पंथ के प्रतिष्ठाता, शुद्धाद्वैत दार्शनिक सिद्धान्त के समर्थ प्रचारक तथा भगवत अनुग्रह प्रधान एवं भक्ति सेवा समन्वित पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक तथा सुधारक के रूप में अवतरित हुए।

विषय विस्तार

स्वामी वल्लभाचार्य के समय हिन्दू समाज की विषम परिस्थितियाँ थीं। उन्होंने तत्कालीन समाज में सामाजिक समानता का संदेश देकर हिन्दू समाज को एकजुट करने का प्रयास किया। उन्होंने सामाजिक वैमनस्य के स्थान पर सभी को समान धार्मिक अधिकार देकर एक आध्यात्मिक समाज सुधारक का कार्य किया। उन्होंने लोक कल्याण का जो मार्ग प्रशस्त किया। वह एक प्रकार से लौकिक दृष्टि से एक नवीन पथ था। उन्होंने संसार को मिथ्या, क्षणभंगुर या त्याज्य नहीं ठहराया। सद्ग्रहस्थ के रूप में रहते हुए सभी वर्ण, जाति, कुल, धर्म की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए सबके कल्याण के लिए श्रीकृष्ण की भक्ति को सहज व सरल रूप में प्रस्तुत करके पाखंडहीन जीवन व्यतीत करने का संदेश दिया। अहिंसा, करूणा, कृपा, अनुग्रह आदि भावों का जाना या वैरागी बनने के लिए दबावपूर्ण अवांछित क्रिया बन्द सी हो गई।[1] आचरण की पवित्रता तथा समदृष्टि भाव मानवता का सर्वोच्च भाव है जो मनुष्य को मनुष्य के मध्य ऊँच नीच की भावना उत्पन्न नहीं होने देता।

अपनी तृतीय आध्यात्मिक यात्रा 1501 ई0 में प्रारम्भ की।[2] इसी क्रम में उन्होंने ब्रज की यात्रा भी की। अपनी आध्यात्मिक यात्राओं में स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कुरीतियों व असमानताओं का विरोध किया। वार्ता साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन के लिए अपने शिष्यों को उपदेश दिये। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्यों की विभिन्न कथाओं को संकलित किया गया है। वार्ता साहित्य का संकलन स्वामी वल्लभाचार्य के पौत्र गोस्वामी गोकुलनाथ द्वारा किया गया।[3] चौरासी वैष्णवन की वार्ता में विभिन्न कथाओं के सन्दर्भों में स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा जाति–पांति, ऊँच–नीच, स्त्री–पुरुष, सामाजिक व्यवहार इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है।

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है कि स्वामी वल्लभाचार्य के समय हिन्दू समाज की हीन तथा नीच जातियों को धार्मिक अधिकार नाममात्र के ही थे। अछूत तथा अस्पर्श उन्हें केवल भगवान का नाम ही सुनाया जाता था। लेकिन स्वामी वल्लभाचार्य ने उन्हें मन्दिरों में आने की अनुमति दी तथा इस वर्ग के कई लोगों को दीक्षित भी किया। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ताओं में संख्या 167 में एक चूहड़ा (मेहतर) अस्पर्श व्यक्ति को मन्दिर में सबसे पहले दर्शन कराया जाता था।[4] वार्ता संख्या (61) में बाल्यावस्था में विवाह की कुप्रथा का सन्दर्भ मिलता है। वार्ता (73) में समाज में पतित मानी जाने वाली वैश्या के उद्धार का वर्णन मिलता है। वार्ता (84) में रामोपसना से कृष्णोपसना को अधिक अच्छा बताया गया है। वार्ता संख्या 252 में स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा अपराधी को भी शिष्य बनाने का सन्दर्भ है।[5] यह अपराधी समाज में हीन दृष्टि से देखे जाते थे। परन्तु फिर भी भक्ति का द्वार सभी के लिए सुलभ था। वार्ता संख्या 202 में यह दिखाया गया है कि स्त्री पुरुष के समान अधिकार थे।[6]

स्वामी वल्लभाचार्य ने कभी भी किसी को हीन नहीं समझा। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में कुम्हार, धीमर, चूड़ा और भंगी जाति के लोगों को भी स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा समान धार्मिक अधिकार देने के सन्दर्भ क्रान्तिकारी थे।[7] इन वार्ताओं में से प्रत्येक वार्ता का एक सामाजिक उदाहरण था जैसे दामोदर दास की हरसानी की वार्ता में स्वामी वल्लभाचार्य के गोकुल प्रवास के समय

सामान्य दृष्टि से सामाजिक व्यवहार की रक्षा की गई है। झूठे और कृतिम सम्मान तथा मर्यादा का उल्लघंन न करने की आज्ञा दी गई है।[8] स्वामिमान को महत्व दिया गया है तथा तीर्थों तथा पर्वों का सम्मान भी दिखाया गया है।[9] तीर्थ स्थान पर मरने से मोक्ष मिलेगा चाहे कर्म कैसे भी रहे हों। इस अंधविश्वास पर स्वामी वल्लभ ने चोट की है।

जो श्रेणियाँ प्रचलित थीं उनके भेद स्वीकार नहीं किये गये। आध्यात्मिक उन्नति के द्वार सभी के लिए खुले थे। स्त्री तथा पुरुषों को समान अधिकार दिये गये।[10] सभी को समान सामाजिक अधिकार देने का व्यावहारिक उपयोग भी किया गया।[11]

स्वामी वल्लभाचार्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था की रूढ़िगत मान्यता को स्वीकार नहीं किया। अपने शिष्यों में ब्राह्मणेतर जातियों को स्थान दिया।[12] स्वामी वल्लभाचार्य का यह उदार दृष्टिकोण उस परम्परा के प्रति विद्रोह ही माना जाएगा जो परम्परा देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार न बदलकर जड़ हो जाती है। विद्वत्समाज का आदर करते हुए भी उन्होंने किसी अशिक्षित या अपढ़ व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की।

समाज व्यवस्था के विषय में स्वामी वल्लभ का दृष्टिकोण युग–सापेक्ष होने के साथ मानव जाति के हित में था। उन्होंने अपने समय में दलित–शोषित वर्ग की दुर्दशा देखी थी और शूद्रों तथा नारियों के विषय में उनका विचार था कि उन्हें भगवान श्रीकृष्ण की कृपा का पूर्णाधिकार है। श्री 'सुबोधिनी टीका' में उन्होंने स्पष्ट लिखा हैं–''ये भक्ता शास्त्ररहिता, स्त्री शूद्र द्विजबन्धवः तेषामुहारकः कृष्णः।''[13] ऐसे शास्त्र–ज्ञान से रहित स्त्री, शूद्र और पतित ब्राह्मणों के उद्वारक श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण भगवान के यहां किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। स्त्री जाति को सम्मान देने के लिए उन्होंने ब्रजांगनाओं को दीक्षित किया।[14]

उदाहरण के लिए स्त्री जाति के साथ उस युग में सती प्रथा के नाम से जो भीषण अत्याचार हो रहा था उसका स्वामी वल्लभाचार्य ने विरोध किया। सती प्रथा का विरोध करने वाले स्वामी वल्लभाचार्य वह संभवतः उस युग में अकेले व्यक्ति थे। स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य राणा व्यास की प्रेरणा से एक स्त्री ने सती होने से इंकार कर दिया। परिवार के बंधु–वांधवों ने बहुत जोर डाला कि वह सती धर्म का पालन करें किन्तु राणा व्यास ने सबको समझाकर बताया कि मनुष्य शरीर रोज–रोज नहीं मिलता। यह दुर्लभ शरीर एक मृतक के साथ नष्ट क्यों किया जाए? यह प्रथा मानवता के लिए अभिशाप है।

अंधविश्वास, पाखंड, भूत–प्रेत आदि के विषय में जो धारणाएं समाज में प्रचलित हैं उनका विरोध स्वामी वल्लभाचार्य ने प्रत्यक्ष रूप से किया। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सुंदरदास[15], माधवदास[16], नरहरि जोगी, दामोदरदास, संतदास[17], प्रभुदास[18] की वार्ताओं में ऐसे विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। भूत–प्रेत से भय, इनकी पूजा, डाकोतियों की भविष्यवाणी आदि पर स्वामी वल्लभ को विश्वास नहीं था। कुछ अंधविश्वास ऐसे भी थे जो चिरकाल से समाज में चले आ रहे थे। जगन्नाथ जी के रथ के पहिये के नीचे आकर मरना सीधे स्वर्ग जाना माना जाता था। इस अंधविश्वास को स्वामी जी ने समाप्त किया और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पहिये के नीचे मरना दुर्लभ मनुष्य देह को व्यर्थ ही नष्ट करना है।[19] तीर्थ यात्रा और तीर्थ स्थान आदि को भी आचार्य जी ने स्वीकार नहीं किया और कहा कि मथुरा, रेणुका या किसी भी पुण्योदक स्थल पर जाकर मरना मोक्ष–प्राप्ति का साधन नहीं है।[20] व्रत रखने से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवत्सेवा ही प्रभु–प्राप्ति का मार्ग है।

निष्कर्ष

स्वामी वल्लभाचार्य के कार्यों का तत्कालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा, आज उसकी क्या प्रासंगिकता है, यह विचारणीय प्रश्न हैं। उन्होंने लोक कल्याण का जो पथ प्रशस्त किया वह एक प्रकार से लौकिक दृष्टि से एक नवीन पथ था। उन्होंने संसार को मिथ्या, क्षणभंगुर या त्याज्य नहीं ठहराया। सद्गृहस्थ के रूप में गृहस्थाश्रम में रहते हुए उन्होंने सभी वर्ग, वर्ण, जाति, कुल आदि की मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए सबके कल्याण के लिए, सबकी पीड़ा को दूर करने के लिए, करुणा प्लावित मन से देशाटन किया था और लोकधर्म का उपदेश देकर पाखंडहीन जीवन व्यतीत करना सिखाया था। स्वामी वल्लभाचार्य वैष्णव धर्म के उन्नायक आचार्यों में से एक हैं। वैष्णव धर्म में अहिंसा, करुणा, कृपा, अनुग्रह आदि भावों का प्राधान्य रहा है।

मध्यकाल में लौकिक जीवन में यौनाचार का जो रूप देखने में आता है उसके उदात्तीकरण का प्रयत्न भी स्वामी वल्लभाचार्य के उपदेशों में है। काम को केवल वासना के विकृत रूप में न लेकर पुष्टिमार्ग में इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण के सौंदर्य और लीला विलास में चित्त को रमा कर आनंद की उच्चावस्था में ले जाने का विधान है। काम की विकृत स्थितियों को दूर रखते हुए उसकी रागात्मक आसक्ति को भगवद् विषयक बनाने में जितना योग पुष्टिमार्ग में दिया गया वह सेवा भावना में लक्षित किया जा सकता है।[21] लोक मंगल विधान की दिशा में यह उदात्तीकरण का प्रयोग माधुर्य भाव की भक्ति को सर्वजन सुलभ बनाना ही है। इस उदात्त भावना के कारण गृहस्थ धर्म और गृहस्थाश्रम की मर्यादा में भी उत्कर्ष आया और गृहस्थाश्रम त्यागकर वन में जाना या वैरागी बनने की दबावपूर्ण अवांछित किया बन्द सी हो गई। जनता ने गृहस्थ धर्म को भली भांति समझा और उसको सम्मानपूर्ण स्थान देकर अपने जीवन में स्थान दिया।

स्वामी वल्लभाचार्य के सामाजिक आदर्शों में आंतरिक स्वच्छता, बाह्य सदाचार और दया को प्रमुख स्थान प्राप्त है। इन आदर्शों के स्वीकार करने में किसी भी व्यक्ति को आपत्ति नहीं हो सकती। अहिंसा, करुणा, प्रेम, दया, ममता आदि गुणों में किसी जाति, वर्ग, धर्म, देश या भौगोलिक सीमा का बंधन नहीं है। जो आदर्श सार्वभौम रूप से स्वीकृत करने योग्य होते हैं वे मानव जाति के पथ प्रदर्शक होते हैं। उन्होंने आत्म–विकास को जीवन में प्रमुख स्थान दिया। आत्म–विकास के लिए आस्तिक भाव से ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास करना भी उनके मत में आवश्यक था, अतः भगवद् अनुग्रह का भरोसा रखकर चलने से जीवन में भटकाव नहीं आता। श्री 'सुबोधिनी टीका' के दशमस्कन्द में स्वामी वल्लभाचार्य ने व्यक्ति के उपदेशों को महत्व न देकर व्यक्ति के आचरण को प्रमुख स्थान दिया है।[22] आचरण की पवित्रता ही मनुष्य को भक्ति पथ पर ले जाने में सफल होती है। सामाजिक न्याय (सोशल जस्टिस) स्वामी वल्लभाचार्य की 'सुबोधिनी टीका' में बहुत व्यापक रूप से वर्णित है। उन्होंने लिखा है कि अपने और पराये की भावना सज्जन पुरुषों में नहीं होती। ''परस्वेति असद्बुद्धि स्तां कदापि न भवति। सः सर्वत्र समदृष्टिः स दोषाभावान्न हन्यते।''[23] समदृष्टि का भाव मानवता का सर्वोच्च भाव है जो मनुष्य–मनुष्य के बीच किसी प्रकार की ऊँच–नीच भावना की दीवार खड़ी नहीं होने देता।

जिस युग में स्वामी वल्लभाचार्य अपने विचारों को जनता के सम्मुख रख रहे थे वह युग राजनीतिक दृष्टि से उनकी धार्मिक भावनाओं के अनुकूल नहीं था, अतः त्रस्त और भग्न मनोरथ समाज को जीवित रहने के लिए उन्होंने जो उपदेश दिया वह त्रिगुणात्मक था। इस त्रिसूत्री योजना में उन्होंने पहली बात कही कि प्रत्येक

व्यक्ति को पूरी शक्ति के साथ स्वधर्म का आचरण करना चाहिए। विधर्म से बचकर चलना चाहिए और पूर्ण संयम के साथ जीवनयापन करना चाहिए। उस युग के पूरे वातावरण और परिदृश्य को ध्यान में रखकर यदि तीनों बातों पर ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट होता है कि स्वामी वल्लभाचार्य की दृष्टि तत्कालीन समाज की स्थिति और उसके समग्र विकास पर केन्द्रित थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दीन दयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, 1970, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग।
2. प्रभु दयाल मीतल, अष्टछाप परिचय, (संवत् 2006), अग्रवाल प्रेस, मथुरा।
3. विजियेन्द्र स्नातक, श्री वल्लभाचार्य, 2002, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
4. बलदेव उपाध्याय, धर्म और दर्शन, 1945, शारदा मन्दिर प्रकाशन, काशी।
5. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, 1972, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2005, मलिक एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
7. शहाबुद्दीन ईराकी, मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन, सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, 2012, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. जगदीश चन्द्र मिश्र, भारतीय दर्शन, 1999, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

अंत टिप्पणी

1. *विजयेन्द्र स्नातक, श्री वल्लभाचार्य, पृ0 53*
2. *प्रभु दयाल मीतल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ0 218*
3. *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 128*
4. *हरिहरनाथ टंडन, वार्ता साहित्य (एक वृहत अध्ययन), 1969, वल्लभ रिसर्च इन्स्टीयूट, जतीपुरा, मथुरा, प्रकाशक भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़, पृ0 596*
5. *वही, पृ0 596*
6. *वही, पृ0 596*
7. *हरिहरनाथ टंडन, वार्ता साहित्य एक वृहत अध्ययन, 1969, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़, पृ0 595–597*
8. *वही, पृ0 597*
9. *वही, पृ0 597*
10. *वही, पृ0 597*
11. *वही, पृ0 597*
12. *श्री वल्लभाचार्य, पूर्वोद्धत, पृ0 53–54*
13. *श्री सुबोधिनी, पूर्वोद्धत, पृ0 189–190*
14. *श्री वल्लभाचार्य, पूर्वोद्धत, पृ0 54*
15. *वही, वार्ता संख्या 85, पृ0 261–262*
16. *वही, वार्ता संख्या 32, पृ0 122–124*
17. *वही, वार्ता संख्या 85, पृ0 258–259*
18. *श्रीआचार्यजी महाप्रभु माधौदासके घर पधारे और कहौ जो अब थार श्रीठाकुरजीके आगें आन राखि तब माधौदास थार ले गयौ श्रीठाकुरजीके आगें भोग धन्यौ फिर बाहर आयौ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू मंदिरके द्वार ऊपर बैठे रहैं सो वहां एक प्रेत नित्य आयकें श्रीठाकुरजीके आगेंते खाय जातौ सो वह प्रेत वाहू दिन आयौ तब देखेतौ श्रीआचार्यजी महाप्रभु विराजें है तब वह प्रेत खिस्यानों और कहौ जो राज अबहूं भूखौ रहूंगौ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने कहौ जो तेने अब ताईं खायो सोतौ खायौ परि अब न खान पावेगौ ताते अब इहांसों जा तब वह प्रेत फिर गयौ तब माधौदास भोग सरावन गयौ तब देखेंतौ थार ज्योंका त्यों भरयौ है। वही, वार्ता संख्या 85, पृ0 262*
19. *विजयेन्द्र स्नातक, श्री वल्लभाचार्य, 1995, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ0 56*
20. *वही, पृ0 57*
21. *स्वामी वल्लभाचार्य, पूर्वोद्धत, पृ0 52*
22. *वल्लभाचार्य, श्री सुबोधिनी, अनुवादक फतेहचन्द्र जी शास्त्री, संवत 2023, श्री सुबोधिनी प्रकाशन मंडल, जोधपुर, पृ0 128–129*
23. *वही, पृ0 270–271*